जून १९९२ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

धम्मपीती सुखं सेति, विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे, सदा रमति पण्डितो॥

बुद्ध के उपदेशित धर्म में पंडित सदा रमण करता है। वह प्रसन्न चित्त से धर्मानन्द में सुखपूर्वक सोता है।

– धम्मपद ६-४.

कैसे सज्जन लोग !

बर्मा का भिक्षुसंघ

वैसे तो पांचों अँगुलियां समान नहीं होती। सफेद भेडों की भीड़ में कोई काली भेड़ होती ही है। परंतु बर्मा का भिक्षु संघ सामान्यतः शील, सदाचार का जीवन जीता है। यद्यपि अधिकतर भिक्षु विपश्यना साधना का सक्रिय अभ्यास नहीं करते परंतु उनमें से अनेकों का अध्ययन बड़ा गंभीर है और सात्विक जीवन तो लगभग सभी जीते हैं। चार करोड़ तक की आबादीवाले ब्रह्मदेश में भिक्षुओं की आबादी लगभग डेढ़ लाख है। परन्तु ये भिक्षु जनता को भारी नहीं लगते, क्योंकि समाज के लिए इनकी उपयोगिता निर्विवाद है। प्रत्येक गांव में भिक्षुओं का एक विहार तो अनिवार्यतः होता ही है। इस विहार में एक या अधिक भिक्षु रहते हैं और समाज द्वारा सम्मान पूर्वक दी गयी भिक्षा पर पलते हैं। यह गांववालों को धर्म की शिक्षा तो देते ही रहते हैं परंतु साथ-साथ अपने विहार में गांव भर के बालक-बालिकाओंको लोकीय शिक्षा – जैसे भाषा, साहित्य, गणित, इतिहास आदि भी पढ़ाते हैं। यही कारण है कि बर्मा की थोड़ी सी आबादी वाले सरहदी गिरिजनों को छोड़कर जहां कि बुद्ध की शिक्षा नहीं पहुँच पाई, बाकी संपूर्ण देश में लगभग शत-प्रतिशत साक्षरता है। इसका श्रेय इन सेवाभावी भिक्षुओं और उनके विहारों को ही है। बर्मा के भिक्षुसंघ के प्रति मेरे किशोर मन में श्रद्धा का भाव जागने का यह भी एक कारण था।

मैंने अपनी किशोर अवस्था में देखा था कि ये भिक्षु समाज सेवा के काममें कितने आगे रहते हैं। उन दिनों भारत में गांधीजी का स्वदेशी आंदोलन जोरों पर था। उसका प्रभाव बर्मा पर भी पड़ा। इस आंदोलन में मांडले के सेवाभावी भिक्षुओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। जैसे आजकल पारदर्शी नायलोन के कपड़ों का प्रयोग होता है वैसे ही उन दिनों बर्मी महिलाएं मैनचेस्टर की बनी पारदर्शी अरगंडी का प्रयोग करती थीं। इससे देश का बहुत सा धन तो विदेश जाता ही था, साथ-साथ देश की सद्गृहस्थ नारियों का यह अंग-प्रदर्शक पहनावा, उस धर्मदेश के लिए अत्यंत अशोभनीय और लज्जाजनक भी था। अतः भिक्षुओं ने इस पहनावे का सबल विरोध किया। भिक्षुओं के इस आंदोलन का ही यह प्रभाव था कि महिलाओं ने अरगंडी का प्रयोग बंद कर दिया। उनकी इस राष्ट्रसेवा को देखकर उस उम्र में ही भिक्षुओं के प्रति बड़ी श्रद्धा जागी।

भिक्षु उत्तम

उन दिनों बर्मा के एक सुप्रसिद्ध समाजसेवी थे भिक्षु उत्तम, जो भारत में रहने लगे थे और वहां के राष्ट्रीय और सामाजिक आंदोलनों में पूरा भाग लेते थे। वह कुछ वर्षों तक अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अध्यक्ष भी रहे। एक बार जब मैं बहुत छोटी कक्षा में पढ़ता था तो वे बर्मा का दौरा करने आये और मांडले भी पधारे। हमारी पाठशाला में उनका एक सार्वजनिक कार्यक्रम रखा गया। पाठशाला के अध्यापक पंडित कल्याणदत्त दूबे हिंदी के कवि थे। उन्होंने भिक्षु उत्तम की प्रशस्ति में एक कविता लिखी, जिसे हम पांच-सात विद्यार्थियों ने समवेत स्वर में गाया था। इस कविता के अंतिम बोल अबतक याद हैं; –

जैसे आप उत्तम हैं, हमें उत्तम बना जाएं !

दूबेजी ने भिक्षु उत्तम की प्रशस्ति में एक छोटासा भाषण दिया और उसमें उनकी राष्ट्रीय सेवाओं का उल्लेख किया। मेरे मानस पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। बर्मा भिक्षु संघ के प्रति बचपन में ही श्रद्धा जागने का यह भी एक कारण था।

सन् १९४८ में मिली स्वाधीनता के पश्चात् रंगून में रहने लगा था। वहां भिक्षु संघ से संपर्क होने के अनेक सुअवसर आए। भारत से भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी और भिक्षु जगदीश काश्यपजी अथवा महापंडित राहुल सांकृत्यायनजी बर्मा आते तो मुगल स्ट्रीट वाले घर पर ही ठहरते। अन्य कहीं ठहरते तो भी भोजनदान का पुण्यलाभ तो प्रदान करते ही। उनके माध्यम से कुछ एक प्रमुख बर्मी भिक्षुओं के संपर्क में आया और फिर १९५३-१९५४ में छठी संगायन के अवसर पर ऊछां ठुन तथा अन्य बर्मी गृहस्थ मित्रों के कारण बहुतसे विद्वान भिक्षुओं से संबंध जुड़ा।

भदन्त विचित्तसाराभिवंस

पांचवी धम्मसंगीति के अवसर पर बर्मी नरेश मिं डो मिन ने सारी बुद्धवाणी संगमरमर के शिलपट्टों पर खुदवायी थी। युद्धपूर्व के बर्मा में मांडले नगर में रहते हुए उन्हें देखा था। उस समय उस विषय का बिल्कुल ज्ञान न होने के कारण मानस पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। बल्कि सच्चाई यह है कि बड़ा गलत प्रभाव पड़ा था, जो कि आगे जाकर तथ्य जानने पर हास्यास्पद ही नहीं, बल्कि लज्जाजनक भी लगा।

मुख्यतः राजस्थान में और सामान्यतः भारत के अन्य भागों में भी किसी संत संन्यासी अथवा राजघराने के व्यक्ति की मृत्यु पर उसकी स्मृति में एक चबूतरा बनाया जाता है। यह खुला होता है। इसके चार खंभों पर गुम्बदनुमा छत बनायी जाती है। इसे मृत व्यक्ति की छतरी कहते हैं। किशोर अवस्था में मांडले रहते हुए समाज के बड़े बूढ़ों में यह मिथ्या मान्यता फैली हुई थी कि ये ऐसी ही छतरियां हैं जो कि मृत भिक्षुओं के अवशेषों पर अथवा उनकी स्मृतियों में बनी हैं। हम बच्चों को उनके समीप ही नहीं जाने देते थे। उनकी बनावट सचमुच छतरी जैसी ही है। एक-एक शिलापत्र के

लिए एक-एक चबूतरा है। खुले चबूतरे की छत पर मुस्लिम गुम्बद या हिन्दू मंदिर की आकृति के बजाय छोटा सा पगोड़ा बना है। हर चबूतरे के बीचोबीच एक बड़ा सा संगमरमर का शिलापट्ट खड़ा किया गया है, जिस पर तिपिटक का कोई अंश खुदा हुआ है। किसीने सच ही कहा है कि यह संसार की सबसे बड़ी पुस्तक है। बुद्धवाणी खुदी हुई इन सैकड़ों शिलपट्टियों को एक-एक पृष्ठ के रूप में चित्त बिछाकर एक पर एक रखें तो सचमुच कितना ऊंचा और विशाल टीलेनुमा ग्रन्थ तैयार हो जायेगा। भारत के अधिकंश लोग अपने इस अनमोल पुरातन धरोहर के बारे में कुछ नहीं जानते। यह तो दुर्भाग्यपूर्ण है ही, परन्तु वर्षों से बर्मा में रहनेवाले भारतीयों का यह अज्ञान सचमुच कितना लज्जाजनक है।

युद्ध के बाद स्वतंत्र बर्मी सरकार ने रंगून में जब छठी संगायन का आयोजन किया तब यह बात समझ में आयी कि भगवान् की वाणी का संपूर्ण संकलन कितना विशाल है और उसकी अट्ठक थाएं [अर्थ कथाएं-भाष्य] तथा टीकाएं, अनुटीकाएं, दीपनी आदि का वाङ्मय सचमुच कितना वृहद् है। इसे जानकर बड़ा विस्मय हुआ और इस बात पर दुःख भी कि भारत की इतनी अनमोल संपदा हम भारतीय खोए बैठे हैं, सर्वथा भुलाए ही बैठे हैं। परन्तु सुखद आश्चर्य इस बात को देखकर हुआ कि यह सारा साहित्य बर्मा, श्रीलंका, थाईलैंड और कम्बोडिया के भिक्षु संघ ने इतनी सदियों से अपने शुद्ध रूप में जीवित रखा है।

सारे वाङ्मय की भाषा तो पालि ही है, परन्तु इन देशों की लिपियां भिन्न-भिन्न हैं, उच्चारण भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी मूल रूप में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं आया। छठी संगायन में इन सभी देशों के विद्वान भिक्षु एकत्र हुए, जिनमें बर्मा के २४३७ और बाकी देशों के १४५ भिक्षु थे। यह सब अपने-अपने संस्करण साथ लाए थे और परस्पर मिलान किया गया तो यत्र-तत्र जो थोड़ा बहुत फर्क देखा गया वह लिपिक की असावधानी से या कंठस्थ करनेवालों के उच्चारण भेद से हुआ था। जैसे सूरियो अथवा सुरियो, वीरिय अथवा विरिय, पथवी अथवा पठवी। कहीं कोई ऐसा पाठभेद नहीं, जो शब्द के अर्थ को गंभीरतापूर्वक बदल दे। यह जानकर सारे भिक्षु संघ के प्रति बड़ी श्रद्धा जागी।

भगवान की मूल वाणी तीन भागों में संग्रहीत है, इसीलिए तिपिटक कहलाती है। याने वाणी के संग्रह के लिए तीन पिटारियां। सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक। इन तीनों को जिस पुरातन भाषा ने पालकर रखा, वह पालि कहलाई। अतः सकल बुद्धवाणी पालि तिपिटक कहलायी।

पांचवी संगायन में सारी बुद्धवाणी संगमरमर की शिलपट्टियों पर खुदवाकर सुरक्षित रखी गयी। छठी संगायन में उन्हें पुस्तकों के रूप में मुद्रित किया गया। परन्तु वस्तुतः यह सारा साहित्य पीढ़ी दर पीढ़ी भिक्षुओं द्वारा कंठस्थ रखकर ही सुरक्षित रखा गया। ऐसे भिक्षु धम्मभंडागारिक याने धर्म के भंडारी कहलाए।

संघ की एक शाखा ने आरंभ से ही पीढ़ी दर पीढ़ी सुत्त की वाणी कंठस्थ कर सुरक्षित रखी। इसके भिक्षु सुत्तधर कहलाए। इसी प्रकार जिस शाखा ने विनयपिटक कंठस्थ किया, उसके भिक्षु विनयधर कहलाए और जिसने अभिधम्मपिटक कंठस्थ किया, वे अभिधम्मधर कहलाए। समय-समय पर ऐसे मेधावी और स्मृतिधर भिक्षु प्रवर भी होते रहे, जिन्होंने तीनों के तीनों तिपिटकों को कंठस्थ किया, वे तिपिटकधर कहलाए।

विनय पिटक में पांच ग्रंथ हैं, सुत्तपिटक में २४ और अभिधम्मपिटक में १२। यों पूरे तिपिटक में कुल मिलाकर ४१ ग्रन्थ हैं। पिछले दिनों यह सारा साहित्य कम्प्यूटर में निवेशित किया गया तो देखा कि पूरे तिपिटक में कुल मिलाकर २५, २१, ८१९ शब्द हैं, जिनमें से कुछ शब्द छोटे हैं, एकाक्षरी हैं जैसे 'च', लेकिन बहुत से शब्द उन दिनों की प्रचलित समासप्रथा के कारण बड़े लंबे लंबे भी हैं। तिपिटक का एक शब्द जो सबसे लंबा है, वह १०३ अक्षरों का है। लगभग १६-१७ हजार पृष्ठों के और लगभग पच्चीस लाख शब्दों के इस विशाल साहित्य को कंठस्थ कर लेना और जब चाहो, जहां से चाहो, तत्काल दुहरा देने की क्षमता बनाए रखना सचमुच अपने आप में एक बहुत उज्ज्वल कीर्तिमान है। आज के बर्मा में भिक्षु विचित्तसाराभिवंस इस कीर्तिमान के धनी हैं। जग प्रसिद्ध गिनीज बुक आफ रेकार्ड में अद्भुत स्मरणशक्ति का कीर्तिमान स्थापित करनेवाले भिक्षु प्रवर विचित्तसाराभिवंस का नाम ससम्मान अंकित है।

तिपिटक के इन इकतालीस ग्रन्थों के अतिरिक्त इस बुद्धवाणी पर अर्थकथाओं, टीकाओं, अनुटीकाओं, भाषाटीकाओं, दीपनी आदि के कुल मिलाकर लगभग दो सौ ग्रंथ याने पांच गुना और बड़ा साहित्य है। भिक्षु प्रवर ने इनमें से भी कुछ को कंठस्थ किया और गिनीज बुक में उनका नाम दुबारा दर्ज हुआ।

भदन्त विचित्तसाराभिवंस सचमुच महती प्रतिभा के धनी हैं। उनकी तुलना भगवान के परम शिष्य आनंद से की जाती है। परम स्मृतिमान महास्थविर आनंद भी प्रथम संगायन शुरू होने के कुछ समय पहले ही अर्हंत अवस्था को प्राप्त कर संगायन में सम्मिलित हो सके थे। इसी प्रकार भिक्षु विचित्त भी कुछ दिनों पूर्व छठी संगायन में सम्मिलित होने के लिए तैयार हुए। हुआ यों कि स्वतंत्र बर्मा के प्रथम राष्ट्रपति को इस बात का बड़ा दुःख था कि उसके शासनकाल में बर्मा में कोई भी तिपिटकधर भिक्षु नहीं है। भदन्त विचित्तसाराभिवंस ने इसे एक चैलेंज के रूप में लिया और सारा तिपिटक कंठस्थ करने का बीड़ा उठाया। छठी संगायन आरंभ होने के कुछ ही दिनों पूर्व के तिपिटकधर की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और आधुनिक काल के प्रथम तिपिटकधर हुए। छठी संगायन में उन्होंने महास्थविर आनंद की ही भूमिका निभाई। पूरी संगायन में महास्थविर काश्यप जैसे प्रश्नकर्ता तो बदलते गए, परन्तु महास्थविर आनंद की भांति उत्तर देनेवाले महास्थविर विचित्त अंत तक अकेले ही डटे रहे। उन्हें तिपिटक केवल कंठस्थ ही नहीं है, बल्कि विषय का ज्ञान भी इतना गंभीर है कि कठिन से कठिन विषय पर उनसे प्रश्न किया जाय तो तत्काल बड़े ही सरल शब्दों में शंकाओं का समाधान करते हैं और विषय का स्पष्टीकरण करते हैं।

बर्मी सरकार ने १९७९ में उन्हें **अग्गमहापडित** की उपाधि से और १९८४ में बर्मा में भिक्षुओं के लिए सर्वोच्च उपाधि **अभिधज महारट्ठ गुरु** के अलंकार से अलंकृत किया। **तिपिटकधर** और **धम्मभंडागारिक** तो वे अपने श्रमसाध्य योग्यता के बल पर हैं ही।

इनके अतिरिक्त उन्हें कुल मिलाकर लगभग तीस अलंकरण, उपाधियां और मिली हैं। भिक्षु विचित्त सचमुच विचित्र हैं, अद्भुत हैं। उनकी मेधाशक्ति और स्मरणशक्ति आश्चर्यजनक है।

पालि के अतिरिक्त बर्मी भाषा पर उनका पुष्ट अधिकार है। बर्मी भाषा में उन्होंने बहुत सी पुस्तकें और लेख लिखे हैं। इनमें से उनकी महान कृति **बुद्धवंस** चिरकाल तक लोक कल्याण करती रहेगी। यह इनकी विद्वत्ता और साहित्य सृजनता का मानो प्रकाशस्तंभ है। यह भगवान बुद्ध की जीवनी है, जो छह भागों में, आठ जिल्दों में तथा पैंतालीस अध्यायों में लिखी गयी है। ५, ५१६ पृष्ठों का यह महान साहित्य जिस दिन हिन्दी भाषा में अनुवादित होगा, हिन्दी और हिन्दी भाषियों का सचमुच बहुत बड़ा कल्याण होगा। उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह सब पुरातन पालि साहित्य के आधार पर लिखा है। अतः सर्वांशतः प्रामाणिक माना जाता है।

उनका मिंगों विहार मेरी जन्मभूमि मांडले के पास इरावदी नदी के उस पार स्थित है। पूज्य गुरुदेव के साथ मैं एक बार उनसे मिलने उस विहार में गया था। वहां उनकी विचक्षण प्रतिभा ने मुझे बहुत प्रभावित किया था।

अब इक्कीस वर्षों के लंबे अंतराल के बाद बर्मा गया तो वे रंगून आए हुए थे। अतः जिस रोज बर्मा पहुँचा उसी रात उनसे मिलने उनके निवास पर पहुँचा। भदन्त विचित्तजी ने रंगून और बर्मा में सरकारी सहयोग से भिक्षुओं के लिए परियत्ति विश्वविद्यालय खुलवाए हैं। उन्हीं में से एक में धर्म प्रवचन देने के लिए उन्होंने मुझे आमंत्रित किया था। यह संस्था विपश्यना विशोधन विन्यास के पालि प्रकाशनऔर विशोधन के कार्यमें महती सहायता प्रदान कररही है।

मैंने देखा कि अब वे अस्सी वर्ष के हो गए हैं। शरीर पहले से बहुत कृश हो गया है। परन्तु फिर भी **चरथ भिक्खवे चारिकं** की भगवत् वाणी से प्रेरित होकर चारिका करते ही रहते हैं। उनका मनोबल, बुद्धिबल और प्रतिभामयी मेधाशक्ति तो पहले जैसी ही विलक्षण है, अद्भुत है। ऐसे महान भिक्षुओं का सत्संग महान कल्याणकारी होता है। मुझे इस कल्याणकारी सत्संग का सौभाग्य मिला।

भिक्षु ऊ थिथिला

विद्वान भिक्षुओं में महास्थविर अग्ग महापंडित ऊ थिथिलाजी बहुत प्रभावशाली लगे। वे वर्षों इंग्लैंड रहे और धर्म के गूढ़ विषयों को सरल-सरल अंग्रेजी भाषा में समझा सकने में बहुत दक्ष हैं। इस बार बर्मा जाने पर उनसे पुनः मिला तो देखा कि ९० वर्ष से अधिक की आयु में भी वे शरीर से भले शिथिल हुए हों, परन्तु मन से तो पूर्ववत् ही सजग और सबल हैं।

भिक्षु ऊ जनकाभिवंश

इसी प्रकार मांडले के समीप अमरापुर में विद्वद्वर महास्थविर ऊ जनकाभिवंश को मिला तो उनकी विद्वता के साथ-साथ सात्विकता, सादगी और कर्मठता देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उन्होंने बहुत सरल बर्मी भाषा में धर्म पर बीसियों पुस्तकें लिखीं। सारे राष्ट्र में उनका बहुत बड़ा सम्मान था। परन्तु देखा उनमें गर्व गुमान का नामोनिशान नहीं था। सरलता और निरभिमानता की सजीव मूर्ति। बातचीत में किंचित् मात्र भी विद्वत्ता प्रदर्शन नहीं।

महापंडित राहुल सांकृत्यायनके बारे में सुना था कि वे पेट के बल लेटकर घंटों लिखा करतेथे। महास्थविर ऊ जनकाभिवंशजीको देखा। वे घंटों खड़े-खड़े ही लिखते। सार्वजनिक सभाओं में वक्ता के सामने जैसे एक ऊंची डेस्क रहती है वैसे उनके सामने उतनी ही ऊंची पर उससे जरा बड़ी डेस्क देखी। इसपर उनके लिखने के लिए एक बड़ा रजिस्टर पड़ा रहता। खड़े-खड़े इसी रजिस्टर में निरंतर घंटों लिखते रहते थे। पुस्तकों की एक बड़ीसी अलमारी पास लगी रहती जिससे कि उद्धरण के लिए किसी पुस्तक का प्रयोग कर लें। परंतु मेधाशक्ति के साथ-साथ उनकी स्मरणशक्ति इतनी तेज थी कि इन पुस्तकों की उन्हें बहुत कम आवश्यकता पड़ती थी। ऐसे प्रबुद्ध भिक्षुओं का संसर्ग मेरे लिए असीम मंगल का कारण बना।

मंगल मित्र,

स. ना. गो.